आज्ञश्चैको बहुभिर्जोषमास्ते ।
प्राज्ञ एको बलवान् दुर्बलोऽपि ॥
(महाभारत शांति पर्व 211/42)

ज्ञानी बहुतों के साथ रहकर भी
मौन रहता है ।
ज्ञानी अकेला दुर्बल होने पर भी
बलवान् है ॥

राजस्थान साहित्य अकादमी
उदयपुर
के आर्थिक सहयोग
से प्रकाशित



किस बसंत का फूल चुनूं

हार्दिक आभार

जिनकी प्रेरणा और सहयोग से यह संभव हो सका

श्री हेमन्त शेष, उपनिदेशक
जवाहर कलाकेन्द्र, जयपुर

श्री तारादत्त निर्विरोध, सयुक्त निदेशक
सूचना एव जन सम्पर्क विभाग
जयपुर

श्री रमाकान्त शर्मा, वरिष्ठ सशोधक
सूचना एव जनसम्पर्क विभाग
जयपुर

किस वसत का फूल चुनू

भानु भारवि

अनुष्टुप् प्रकाशन
13, गायत्री नगर, सोडाला
जयपुर–302 006

: भानु भारवि

मूल्य : पचास रुपये

संस्करण : प्रथम, 1994

आवरण परिकल्पना : हेमत शेष

प्रकाशक : अनुष्टप् प्रकाशन,
13, गायत्री नगर, सोडाला
जयपुर - 302 006

लेजर टाइपसेटिंग : क्रिएशन
80, पटेल कालोनी,
पी.एम.जी. आफिस के सामने,
सरदार पटेल मार्ग, जयपुर-1

मुद्रक : पॉपुलर प्रिन्टर्स,जयपुर

---

kis basant ka phool chunun
a poetry by bhanu bharavi

क्रमानुशासन

एक ईमानदार कविता - यात्रा की अविज्ञप्त रजत जयन्ती

भानु भारवि का प्रस्तुत कविता संकलन "किस वसन्त का फूल चुनूँ" उनके पहले काव्य-कर्म से पूरी तरह भिन्न और "नया" है - यह कह पाना तो शायद सच न हो, किन्तु इस संग्रह की इन इकसठ कविताओं में भानु भारवि अपने पूर्ववर्ती काव्य-सरोकारों और मुहावरे को ही अधिक संश्लिष्ट करने के उपक्रम में तल्लीन दिखते हैं । "एक और एक दो बनाम एक - एक ग्यारह" नामक अपनी पहली काव्य पुस्तिका में भानु भारवि ने हिन्दी के कविता परिदृश्य में तब सन सत्तर के आसपास बहुप्रचलित और लोकप्रिय सपाटबयानी से प्रेरणाएं ग्रहण कर अपने काव्य संवेग को (बिना कविता-कौशल की ज्यादा चिंता किए) पूरी आक्रामकता और विस्फोटक आत्म-विश्वास के साथ अभिव्यक्त किया था, पर अब, लगभग चौबीस साल गुजर जाने के बाद, उनके काव्य-नजरिए में एक प्रौढत्व, ठहराव और सघनता आई है, और ये कविताएं उनके कविता-विकास की आगामी मंजिल का लगभग ठीक-ठीक पता दे रही हैं ।



चर्चा के क्षण   हेमन्त शेष के साथ

इन कविताओं का काव्य-विषय भी, निःसंदेह समाज और व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व ही है, किन्तु अब वह चिंताओं को व्यक्त करने की अपनी पुरानी शैली की बजाय अधिक संश्लिष्ट और सूक्ष्म पर्यवेक्षणो से मिलकर बना है । निःसंदेह इन कविताओ की कवितात्मकता और "दार्शनिकता" पहले की तुलना में अधिक बढ़ी है और वे ज्यादा संघिनित और परिपक्व हुई हैं ।

"किस बसन्त का फूल चुनूँ" नामक कविता से इस संग्रह का नामकरण किया गया है – जो जीवन में कवि के वरण के द्वन्द्व का प्रतीक भी है और उसकी कविता-चिंता भी । उदाहरण देखें –

" अब तक गुजरे इन सभी बसन्तों और
अब गुजरने वाले बसन्तों में से
किस बसन्त में खिला हुआ फूल चुनूँ ?"

कहीं–कहीं इन कविताओं में निराशा, घुटन, त्रास और असहाय के अहसास हैं तो कहीं समाज, व्यक्ति और उसके आसपास के दूसरे सरोकारों को लेकर चिंता, व्यक्ति और उसके आसपास के दूसरे सरोकारों को लेकर चिंता, आशंकाएं और भय, पर कविता का मूल स्वर अंततः आशावादी ही है । वे हमें चीजों से परास्त हो जाने के डरों तक नहीं पहुंचातीं – सकारात्मक आत्मविश्वास से, बुरे वक्तों में दो–दो हाथ करने के संकल्पों का परिचय देती हैं । इस आशय मे इनकी कुछ कविताएं जीवन और जीवन–संघर्ष में कवि के बार–बार गहराते विश्वास को व्यक्त करती जान पड़ती हैं । भानु भारवि की कई कविताएं भारतीय दर्शन और चिन्तन शैली से प्रभावित रचनाएं हैं ।

पाठको को कुछ कविताएं अभिव्यक्ति के स्वाद की भिन्नताओं की वजह से थोड़ी सी चिंता में डाल सकती हैं किन्तु यहाँ इस बात को रेखांकित करना जरूरी लगता है कि ये कविताएं, पिछले लगभग 12 वर्षों के दौरान समय–समय पर रची गई हैं और अकेली हिन्दी की कविता ने शिल्प और कथानक – दोनों स्तरों पर इस दौरान बहुतेरे रंग देखे हैं ।

भानु भारवि की कविता की यह विशेषता है कि वह कविता की विभिन्न चालू वृत्तियों से प्रभावित नहीं होती और अपने ढंग और अपनी निजता में वह एक ईमानदार, अविज्ञप्त, अप्रचारित कवि के आंतरिक संघर्षों और सारे अन्तर्विरोधों का परिचय देती है ।

भानु भारवि की कविता इसीलिए एक ईमानदार कविता है बिना आलोचना और स्तवन की पर्वाह किए – कविता होने की शर्तों को पूरा करने की कोशिश में सन्नद्ध/

भावप्रवण/आर्द्र और अनगढ़ । शायद यही "अनगढ़ता" इस कविता की अपनी निजता है ।

– हेमन्त शेष
सी-8, पृथ्वीराज मार्ग,
सी-स्कीम, जयपुर – 302 001

चेहरे

यह शहर है चेहरों का
यहां
हरकत करती हुई हर जोड़ी टांगे
लदी हुई हैं
एक मुर्दा चेहरे से.
कुछ लाल – चमकदार चेहरे
उलझे धागों सी
झुर्री वाले चेहरों का
कर रहे हैं उपहास.
कुछ चेहरे हैं अजनबी – चेहरों से
और कुछ
दंभ रखते हैं –
अजनबीपन का.
यह शहर है चेहरों का
यहाँ चेहरा बनाम चेहरे हैं.



इक्कीसवीं सदी

इक्कीसवीं सदी
ऐसे नहीं आएगी
लेके जायगी जान बहुतों की
आदमी की जगह यंत्र होगा
मेहनत की जगह मंत्र होगा
अपंग होंगे हम
यंत्र दौड़ेंगे
तकनीक खरीदेंगे
शिल्प बेचेंगे
इक्कीसवीं सदी गिनते - गिनते
कई बरस भूलेंगे
उतावलेपन में.
इक्कीसवीं सदी जल्दी आवे
हमें कोई गिला नहीं
हाथों का काम न छिने
कदम न लडखड़ाए
पेटभर खाके सोवें सब
उठें तो तन - दुरुस्त से.
गांव, गांव रहें -
शहर रहें शहर
गाँवों को न हड़पें शहर.
थक कर सोएं
लपक कर उठ्ठें.
विकल्प न बने यंत्र
आदमी के
व्यवस्था बने

श्रम कारखानों में बसे
न पहुंचे मंडियों मे
एक - एक कर गिने हम बरस
हम गिनते रहे - बरस गुजरते रहें
और खुशहाली के साथ
आ जाए इक्कीसवीं सदी.



मोर नहीं नाचता

हरी घास की पीठ से उतर कर
जब
भागने लगते हैं ओस के सवार
तब उड़ चुकी होती है
मौसम की ठंडक
लौट-लौट आता है
सूरज के अलाव में
तापता वैशाख
खड़ी रह जाती है
मौन कोयल – कि न जाने कब
झर जाते हैं मोर-पख
कोई आता है
रोज-रोज
समेट ले जाता है पंखो को
बनाता है मोर-मुकुट
पहन जिसे
घूमने लगता है
हरी घास पर
मौसम में ठंडक लौटती है
वैशाख नहीं आता
किन्तु
पंखों के बिना मोर नहीं नाचता
मिठास के बिना कोयल नहीं बोलती
किन्तु वह तो जरूर नाचता है घास पर
पहन कर मोर-मुकुट
गाता भी है.

मेरे महरबान

फूलों की तराजू पर
पंख तोलती तितलियों पर
चाहे
चुभोते रहो दृष्टियों के नश्तर
किन्तु,
हथौड़े पीटते हुए
मेरे हाथों को तरफ न देखो
भले ही नहलाओ
सुगंधित झागों से
अपने पालतू पिल्लों को
मगर, मत देखो
पसीने से तर-बतर मेरे शरीर को.
मुझे डर है – यदि
आपने मेरी किसी भी विडंबना से
कर लिया होगा साक्षात्कार
तो आप जरूर रच डालोगे
एक कविता मेरी बदनसीबी पर
और
शहर के व्यस्त "काफी हाऊस" में
कर डालोगे
एक गरमा-गरम बहस.
मैं न तो बनना चाहता हूँ
आपकी बहस के चटखारे
और न ही आपके मनोरंजन का सुलभ साधन.
इसलिये हे महरबान !
बख्श दो मुझे मेरा यथार्थ्य
रहने दो मुझे
अपने ही हम शक्लों के बीच
मुझे जरूरत नहीं तुम्हारी हमदर्दी की.



सुबह जरूर होगी

भोर परिंदे की आहट से जब
जागा मेरा अतीत
हथेलियो मे रचे
घिसियाते मेहदी के रग सा
सब कुछ भूलता चला गया
प्रश्न उग जाए
यहाँ – वहाँ
धतूरे के फूल से
कुछ किया तुमने
मुझसा – कुछ भी
पूछ-पूछ मुरझाए
सुबह के बाद शाम
और
शाम के बाद सुबह जरूर आएगी
सोचते सोचते
न जाने कब
डूब गया वह अकर्मी
नींद की अथाह गहराई मे
क्या करपाएगा वह
कुछ-कभी
सरसो के फूल सा

आपके आने पर

नंगी पहाडियां
नंगे दरख्तो और
नंगे लोगों को
ढक दिया जाता है चम्पा के फूलों से
जब आप यहाँ से गुजरते हैं.
पुते-पुते लोग
खिले-खिले चेहरे
और
हरियायी बस्तियाँ ही
दिखाई जाती हैं – तुमको
जब आप यहां से गुजरते हैं.
पहले से ही तयशुदा रसतो से
गुजरते हुए
क्या तुमने कभी सुना है क्रन्दन
फूलों से ढके हुए इन लोगों का ?
इन गूंगी पहाड़ियो
गूंगे दरख्तों – और
गूंगे लोगो की
मूक भाषा को
कभी सुना – समझा है – आपने ?
नारों के शोर और कठोर आवरण में दबी
इनकी आवाज़
धुंए की लकीर सी
बन-बन मिटी जाती है.
चंपा के फूल पर
इत्र छिडक कर

सजाये गये गुलदस्ते को देख
क्या कभी सोचा होगा आपने कि -
ये फूल कैसे रहते होंगे हमेशा
खिले-खिले
मुरझाते तो होंगे - कभी तो
सच्चाई यह है कि -
ये फूल जो आपके गुलदस्ते में सजाये गये हैं
वे हमेशा रहते हैं मुरझाए हुए किन्तु,
इन्हें भली भांति सिखा दिया जाता है
बने रहना तरो-ताजा
आपने आने पर - आपके चले जाने तक



रुका हुआ प्रहर

सांप सी डस जाती है
एक सुबह – जब
सीढियों से लड़खड़ाकर
गिरने लगती है धूप
मैले आंगन में
तब अभावों के आंगन में
नाचने लगते हैं
कुछ मुस्तैद सवाल.
जिसे देख कर
गुजरता हुआ वह पहर
थम जाता है एक कोने में
और
हाथ में थाम कर
नीम की दातून
पीने लगता है
अहसासों का कडवा घूट
तब
मेरी अंगुलियां
थिरकने लगती हैं
सूखे पत्तो के तानपूरे पर
और मैं
करने लगता हूँ रियाज
एक कुशल गायक सा – तब
मंद पड़ने लगते हैं
सवालों के नाच
सुलझे उपायों के घुंघरूओं के वोझ से.

❑❑

वस्तुबोध

आमों की अलसाई छांव
पसार देती है
स्निग्ध पैरों की लंबाइयां
अनागत बसंत की प्रतीक्षा में
अग्रशीलता के अश्लील साजों की
कड़वी राग में डूबी
पतझड़ की सफेद धूप
टिमटिमाने लगती है
बेताब आखों की पुतलियां-
सामयिक चेतना के अलार्म से चौंक कर
पलाश की पीले पत्ते
स्वतः ही रेंगने लगते हैं
रेतीले टीलों की उपत्यकाओं की ओर
और वह
अनरुका पहर
उतार कर
कल्पनाओं की नकली पोशाक
देखने लगता है
असलियत की अनावृत्त सच्चाईयां.

पदयात्रा पर

यों अंधेरे की अंगुलियां थामें
कब तक खोजते रहोगे
लोक प्रियता के रसते –
चढा कर रोशनी की ऐनक
दिशाओं की अंधी आंखों पर.
सच्चाई के नंगे पेड़ पर बैठे
दिवांध की आवाज के सहारे
क्या कभी साध पाओगे किसी
लक्ष्य पर सटीक निशाना.
भले ही तुम्हारे कदमों में
अचानक भर गई हो हरकत – या
अचानक भर गया हो
आशा, उद्देश्य और प्रेरणा का संचार
तुम्हारे कदमों में –
फिर भी –
बेईमान उद्देश्यों की बैसाखी के सहारे
नहीं रौंदी जा सकेंगी
मेरे गांव की एकपदी.
चाहे गांवों की तरफ
हो गया हो – तुम्हारे
कदमों का रूख – लेकिन
अभी भी खुलते हैं
तुम्हारी वैचारिक हवेली के गवाक्ष
सड़को की तरफ
इस तरह तुम
वास्तविकता से परे

खो रहे हो भटकावों के जंगल में
ग़र तुम चाहते हो
लड़खड़ाती पगडंडियों को सम्हालना – तो
चलना होगा तुम्हें मेरे साथ वहाँ – जहाँ
सिसकियों के दबे स्वर
ख़ुद-ब-ख़ुद सुनाई देने लगेंगे – तुम्हें
और तुम वहीं ठहरकर करना चाहोगे
अपनी इस पद-यात्रा का अवसान.

थमना नहीं

थमना नहीं
ए, यायावर !
गति जीवन है तेरा.
बहकना मत –
खुशबूदार हवाओं के प्रपंच में.
बहते रहना
पतली जल – धार सा –
काट-काट अवरोधों को
मारग चुनना.
छोड़ना पद चिन्ह
समय की पगडंडी पर
अनभटके गन्तव्य तक
पहुंचे कोई तो.
अनथमे पहर सा
बढ़ते जाना
सांझ सा ढलना नहीं तू –
बढ़ते जाना
पूर्णचन्द्र बन अंध निशा में
बन सूरज तू
दूर भगाना अंधियारे को.
ए यायावर !
थमना मत तू
बढ़ते जाना
बढ़ते जाना.

❑❑

ज़मीन के ऊपर

जमीन से डेढ इंच ऊपर
चलने वाले
जरा जमीन पर चल कर देख
तेरी बदली हुई चाल और बोली
बता रही है कि – तूने
अभी-अभी तोड़ा है जमीन से वास्ता
ठोकर से डर कर
हवा में तैरने वाले
जरा सोच
जब हवाओं के थपेड़ों में
दिशाएं हो जाएंगी गुम
और जब
छिप जाएगा
धूल के अंधे गुबार में
दूर से टिमटिमाता
वह प्रकाश – स्तंभ
तब ऐसी कौन सी दिशा में
दिखेगी तुझे उजास की किरन ?
हवा में उड़ते हुए
उस रद्दी – कागज के टुकड़े सा
गिरेगा तू
किसी अनिश्चय के डगमगाते धरातल में.
सुबह होगी
यह सोच
अंधेरे बंद कमरे में पड़ा तू
बाहर निकल और
सीखले
अपनी जमीन से जुड़ना.

क्या गांव था मेरा वह

क्या गाव था मेरा वह
जहां नासारन्ध्रों की देहरी पर
गोधूलि की मधुर गंध
दिया करती थी दस्तक.
कितनी आतुर रहती थी
गलरज्जु तुड़वाती बछिया
आलिंगन को
मात विरह के दुखद क्षणों को बिसराती सी.
कितना पुर सुकून था – यह
दिवस का अवसान – जब
लौटता हरनाथ
खुशी-खुशी सा
थका-थका सा
डाले अलगोजों का बोझ कांधे पर
रंभाती गायों के पीछे बहुत उतावला
क्या गांव था मेरा वह
जहां पनघट पर
भरता था पानी का मेला.
भर मटकी घर आती
बल खाती भौजइया
धारा शीतल जल सी
हरियाये खेतो की
वो सरदाई रातें
भूल कभी पाऊंगा इसको ?
फसलो मे डूबा मनुज
जिसे सींचता

रक्त – स्वेद से
भूखा रह – रह
प्यासा रह – रह
अनदेखी आस में
आंखे टिमियाता – शांत
समंदर में चुप लहरों सा.
मखमल सी रेत की
पगडंडियों को
डस गई
पत्थर की काली सर्पिणी.
गाड़ी की लीक
और बैलो के खुर को
कुचल गई
धड़धड़ाती
धुंए की लकीर छोड
गुजर गई दानवी

मूलमंत्र गति का

तुम अगर पर्वत पर
चढ़ना चाहते हो तो चढ़ो जरूर.
मत खींचो टांग अगर
चढ़ता है कोई
चढ़ने दो उसे
बढ़ने दो उसे.
मत काटो देवदार पर्वत से
अगर कुछ कर सको तो
ढूंढो संजीवन घूंट.
सूंघो उड़ती माटी की गंध
मत देखो विगत – रथ की रेख
दिशा पहचानो.
उगता होगा सूरज
यहीं-कहीं किसी दिशा में
अनवरत चढ़ता होगा
दुर्गम पथ पर.
चढ़ता होगा – चढ़कर फिर अथता होगा
पर्वत के पीछे.
चढ़ो पर्वत पर
उतर कर पीछे – रोको उसको
सीखो मूलमंत्र
गति का/चढ़ने का/
बढ़ने का/
हर पल चलते रहने का.

❑❑

समय की नब्ज़

किसी ने समय को थमते हुए देखा है ?
लोग थम जाते हैं
हवाएं थम जाती हैं
लेकिन समय नहीं थमता.
किसी ने समय को थकते हुए देखा है ?
लोग थक जाते हैं हवाएं थक जाती हैं
लेकिन समय नहीं थकता.
समय के जुबां नहीं होती
लेकिन वह फिर भी बोलता है
जोर-जोर से.
घटनाएं और स्मृतियां जब
बताती हैं आप-बीती
तब समय बोलता है.
समय पथ है
समय रथ है
समय चलता है तो नहीं होती
कदमों की आहट
इस आहट को सुन पाते हैं वही
जो चलते हैं अनवरत.
समय अदृश्य है
अनघटे वृत्तान्त की तरह.
समय गुजरता है किन्तु,
दिखाई नहीं देता गुजरते हुए
गुजर जाता है न जाने कब
पकड़ नहीं पाते हैं उसको.
लोग कहते हैं

समय साक्षी होता है
समय बलवान है
सब परास्त हैं इसके सामने
समय की नब्ज पहचानो
हो जाओ समय के साथ
बिना और अधिक समय गवाए
समय का उपयोग करो
कुछ भी करो मेरे दोस्त !
करते रहो निरंतर कुछ भी
समय तुम्हारे पीछे चलेगा
समय तुम्हें थमता दिखेगा
समय तुम्हें थकता दिखेगा
तुम समय को पकड पाओगे
और न छूट पाएगा वह
तुम्हारी पकड़ से



पिछला दरवाजा

कुछ लोग चाहते हैं
पिछले दरवाजे से निकल भागना
तो कुछ चाहते हैं प्रवेश
पिछले दरवाजे से.
अनिश चय और हीनता की
गहरी नदी में डूबे वे लोग
किनारा नहीं पा सकते
तैरकर – क्योंकि –
क्षमता नहीं है उनमें तैरने की
या
आता नहीं उन्हें तैरना
इसीलिये तो किनारे की तरफ बढती हुई
कश्ती में लटक जाते हैं वे
नाविक और नाव में सवार लोगों की
आंखों मे धूल झौंक कर.
पीछे के दरवाजे से भागने वाला
जरूर होता होगा कोई चोर
वरना नहीं करता
पिछले दरवाजो का उपयोग –
पकड़े जाने के भय से.
पिछला दरवाजा ही लगता होगा उन्हे सुरक्षित.
मैं पूछता हूं –
लोग क्यों बनाते हैं
पिछला दरवाजा
शायद, आगे के दरवाजों से न हो सकने वाले
कामों को करने में

ोती होगी उन्हें सहूलियत
रे जैसे असख्य लोगो के
ोता नहीं पिछला दरवाजा
ौर न पडता कोई काम
पिछले दरवाजे से
ैंने देखा है
बडी-बडी हवेलियो मे
होते हैं
बडे-बडे पिछले दरवाजे
जहां से नित गुजरते हुए
मैंने देखा है
कुछ सदिग्ध लोगो को
इन बडी-बडी हवेलियो को
बनवाने के लिये
आया - होगा धन पिछले दरवाजे से
सुरा के एक ठेकेदार के यहाँ
कुछ अफसर भी
आते-जाते हैं इसी दरवाजे से
शराफत का बुर्का ओढे
कितना उपयोगी होता है
उनके लिये यह पिछला दरवाजा
तभी तो सुबह-सुबह
वो लगते हैं तरो-ताजा
आगे के दरवाजो पर रहते हैं
कडे पहरे
पिछले दरवाजे पर छिपे हैं
रहस्य गहरे-गहरे
एक दिन एक पिछले दरवाजे के कारोबारी को

पड़ा हार्ट अटेक तो
मरा पिछले दरवाजे पर
अर्थी जब उसकी निकली तो
भीड़ थी
पिछले दरवाजे पर भारी.
इस कारोबारी के थी
एक सुन्दर सी बेटी
बाप के यों अचानक चले जाने से
जो अब तक थी कुंवारी
दिल लगा किसी से – तो
भागी पिछले दरवाजे से
उसी के साथ बिचारी.
कहानी बड़ी लम्बी है
रहस्य बड़े गहरे हैं
कहें तो कहें किसे
हुक्मरानों के दरवाजों पर
रहते कड़े पहरे हैं.
न कहना किसी से कुछ इसके बारे में
इस शहर के सभी लोग
सब कुछ जानते हुए भी
बिल्कुल अंधे और बहरे हैं ।

कब्रगाह की तरफगी

कब्रगाह की तरफगी
स्वीकार ली है मैंने
जहाँ आदमियत के अधमरे शव
दफना दिये जाते है बेवजह.
उन्हीं कफन के चिथड़ो को
कब से सहेजता रहा हूँ – मैं
और उन पर
अपने ही हाथों से
शिल्प को प्रयोगते हुए
उपक्रम की समाप्ति की दशा से
होता रहा हूँ बेखबर.
इस बार
मौसम की अंगुलियां
बढ़ा रही है अपने नाखून
और पचतंत्र का वह सियार भी
धनुष की प्रत्यंचा पर
दांत आजमाते हुए
हो रहा है उसी का शिकार.
अनिर्णय की सीढ़ियां
चढ़ते-उतरते
मुल्कों की सीमारेखा सी
खिंच गयी हैं वक्र लकीरें
मेहनत की क्लान्त पिंडलियों पर.
वे आदमियत के शव
आज भी घिस रहे हैं
अपूरित अपेक्षाओं की हस्तरेखाएं

कब्रों की संदूक में –
जहां से लौटते रहे हैं
ठहाकों के काफ़िले
थोप कर
ज़नाज़ों की औपचारिक सहयात्रा का भारी कर्ज़
मेरी पीठ पर

फ़ासले

सड़कों पर आ गया है
समूचा शहर
बदस्तूर जारी
शब्दों की दुर्घटनाओं से
बिखरने लगा है
बे-आशय का रंगहीन खून
अचानक गिर गये हैं
रंगमंच के पर्दे
और
बेविकल्प दर्शकों के समवाय
चढ़ाने लगे हैं चश्मे
पीठ की आँखो पर.

क़तई नामुमक़िन हो गया है मिटाना
विपरीत दिशाओं की तरफ़
भागती हुई दिशाओं के फासले.

सड़कों पर आ गया है
समूचा शहर
दोहराते हुए
उन्हीं रसतों के पद-चिन्ह
जहां से कभी चाहा था तलाशना
बेअंत फ़ासलो का केन्द्र बिन्दु.

❑❑

अनधिकार

ईसा को सलीव पर चढ़ाने वाले
अपने शरीर पर
मार कर देख
एक तीखा पत्थर.

सड़कों की पथरीली खाट पर
बादल ओढ़ कर देख
बर्फीली रातों में.

साहस तो कर
अपनी पांचों अंगुलियों में से
किसी एक पर
आलपिन चुभाने का.

अपने अन-जिये अनुभवों को
यदि तुम करा सकते हो
सामीप्य का अहसास तो
मेरे साथ चल -
वरना,
तुम्हें कोई अधिकार नहीं
इसे अपवित्र करने का.

सलीब पर टंगा यह ईसा का शरीर
हमेशा याद दिलाता रहेगा मुझे
तुम्हारे द्वारा किये गये अनाचारों की
और मैं कर पाऊंगा हर संभव प्रयास
इससे निपटने का.

सबक

प्रतीक्षा की झोंपड़ी के बाहर
झड़े हुए चमेली के फूल
दे रहे हैं
किसी अनागत के आने का संकेत.

एक अनन्य साध्वी
अभी-अभी लौटी है
इन झड़े हुए फूलों को बटोर कर
वापस लौटाने को.

गोमुखी के अन्दर
निरन्तर फैरते रहने से
टूट चुकी है
तुलसी का माला – और
धागे से छिटक कर मोती
लुढ़कने लगे हैं जमीन पर.

प्रतीक्षा की झोंपड़ी अब हो चुकी है जर्जर
निकल चुका है तुम्हारे लौटने का समय भी
यह सोच
शायद, अब तुम नहीं लौटोगे
मैं खुरदरे पत्थर पर
घिस रहा हूँ
एक जंग सना हथियार.

अब इस सबक को प्रतीक्षा नहीं तुम्हारी
प्रतीक्षा है उस अवसर की
जब इस पैनाए गए हथियार का
मैं करूँगा सविवेक इस्तेमाल ।



समाधान

बोझिल सड़कों पर बादल ओढ़ने वाले
तुम कौन हो मेरे हमशक्ल
अपनी उम्मीदों को
शरीर देने की उत्कंठा वाले
ए, विश्रान्त पदयात्री
वह दुरूह मंजिल क्षितिज के उस पार है.

तुम्हारी बुझी आंखो का पीलापन
बिखेर देता है कुछ नापसंद धब्बे
आश्वासनो की रंगीन दीवारों पर –
जहां तुम्हारी कमजोर और पीली आँखे
पढ नहीं पाती हैं
सफलताओ का खुला इश्तहार

तब तुम्हारी बैचेन अंगुलियां
टटोलने लगती हैं
समाधानहीनता के किलों का अंतिम छोर

मैं देखता हूँ
कुछ लम्पट उचक्के
हर बार बचा लेते हैं तुम्हे
मौत के कुएँ मे गिरते-गिरते –
और अपने चुनाव-चिन्हो पर लगवा कर
तुम्हारे मजबूर अंगूठे
हो जाते हैं फरार –
इस तरह
उलझा दिये जाते हैं

तुम्हारे वाजिब सवालों के शब्द
असामयिकता की जटिल व्याकरण मे
और तुम
किसी भीड़वाली चतुष्पदी पर बैठे
तलाशने लगते हो
उलझे प्रश्नो के समाधान



दिवास्वप्न के बाद

जब तुम लहरों से बतिया रहीं थीं
तब मैं उन्हें
निरंतर पहाड़ पर फेंकने की प्रक्रिया के थक कर
घटा रहा था
अपनी उम्र की लंबाइयां.

एक बार जब अपनी वापसी पर
पुनः तुम्हारे बंद दरवाजों को
मुड़कर देखने की अंतिम इच्छा से
लड़खड़ा गई थी मेरी दस्तक
तब तुमने मेरे
पीड़ित घुटनों को
नहीं दी थी
औपचारिक हमदर्दी की मात्र दो अंगुलियां.

जब मेरे विगत के अहसास
शूलों के पर्यंक पर
बदल रहे थे थकावट की करवट
तब तुम देहरी के उस पार खड़ी-खड़ी
संवार रहीं थी
अपने नाखूनों पर पालिश.

वह कोई दिवास्वप्न नहीं
एक जिन्दा सुबह थी –
जब तुमने
नागफनी के गद्दो पर
मेरे साथ धूप गुजारने की

दी थी सहमति.
तब तुम और मैं
खजूर की छांव तले
मिटा दिया करते थे
दोपहर की बौनी परछाइयां
और प्रसंगों के चरम काल में
बिखेरने लगते थे
खुशी के फव्वारे
संध्याकालीन परछाइयों की तरह.

शायद, तब तुम्हारी
नरम अंगुलियां
खोजती रही होंगी
मेरे उलझे बालों में से
गुजर जाने का रास्ता –
मेरी निर्निमिष पलकों के पिछवाड़े से.

और हर बार तुम्हारे
हड्डी पर बने घाव पर
नींबू निचोड़ने से
मेरी चीख़ खो चुकी थी दर्दों के लफ्ज़
और मैं
आश्रयहीन अकेलेपन पर
इस प्रत्यक्ष वृत्तान्त को भी
देने लगा था
दिवास्वप्न के बाद का संबोधन.



भूखा

भूख छिटक देती है
बंद धागों के दरवाजे.

होठों पर अकस्मात्
पीड़ा के चरमकाल में
एक दबी सी चीत्कार
त्याग देती है –
उस जीभ का सहवास
जो सूखे होठों को
सींचती है बार-बार
अनभीगे पानी से.

उदर के
अंडाकार लौह पथ पर
रेल इंजन सी
धड़ा-धड़ भागती हुई
आभासने लगती है
एक बेराक हलचल –
और भीतर – ही – भीतर
बढ़ने लगती है

अंगारों की भीषण गरमी
जिसके सीमापवाद की स्थिति में
निरर्थक हो जाता है
अनग्निकरण का अन्तिम हथियार
और इस असह्य पीड़ा को जीते-जीते
वह स्वतः ही बुझकर
होने लगता है शान्त
आहिस्ता-आहिस्ता.

शब्दों की आवाज

मेरी जीभ पर चुभाया गया आलपीन
लिख रहा है कागज पर
लाल अक्षर.

बिगाड़ नहीं पाएंगे
मेरे दिमाग में ठोकी गयीं
खूंटियों के निशान
चेहरे की खूबसूरती

जो बात तुम कहे-कहे जा रहे हो
मुझे मालूम है उसका अर्थ
लेकिन मेरे शब्दो की आवाज
लिपि बनकर उभरेगी –
आलपिन के चुभन की वेदना
रक्त बन कर बनाएगी चित्र
समय के कैनवास पर

जो तुम किये-किये जा रहे हो
मुझे साफ-साफ मालूम है उसका आशय
मेरे दिमाग पर बनाये गये खूंटियो के निशान
बन जाएंगे
तुम्हारे आचरण की कहानी – फिर भी
मेरी भावना और आस्थाएं
वही कहेगी
जो मैं देखता, सुनता और महसूसता रहूंगा.

जब लिखे गये लाल अक्षरों

और
रक्त से बनाई गई तस्वीरो मे
उभरेंगी आक्रोश की सामूहिक ध्वनिया
तब स्वत ही खुल जायेगी
तुम्हारे आचरण की कलई और
साफ-साफ दिखाई देने लगेगी - वह
मेरे द्वारा बनाए गये शब्दो और चित्रो मे

समय की सुइयां

भोर होते ही आरंभ हो जाता है
सवालों का लम्बा सिलसिला
जबकि लोग
देहरियों पर अटका कर कुंदियां
हो जाते हैं तितर-बितर.

रात की अकाट्य नीरवता
जब डूब जाती है
व्यस्तता के अश्रव्य कोलाहल में
तब हरी घास पर चमचमाती
मुक्ता सी जलबिन्दुएं
खोने लगती हैं अपनी अस्मिता.

लोहे की खूंटियां मे
दृढ़ता से बांधी गई
नग्न अरगनियां
झेलने लगती हैं
जलसिक्त परिधानों का बोझ.

परस्पर होड़ करती हुई
गगन स्पर्शी चिमनियां
उगलने लगती हैं
मेहनतकशो की सिसकियों का
काला धुंआं.

परिंदे दाना चुगते हैं
पंख फड़फड़ाते हैं

चोंच लड़ाते हैं – और
आंख मूंद कर बैठ जाते हैं
किसी ठंडे पेड़ पर.

निरन्तर घूमने लगती हैं समय की सुइयां
एक परिधि के भीतर–भीतर
तब मुझे दिखाई नहीं देता
इसका छोर कि –
यह कहां से तो हुई होगी आरंभ
और थमेगी कब – कहां जाकर.

पद-चिन्ह

मौसम की टूटी छत पर
अचानक बरस उठा है पावस
हमेशा की तरह
टर्राने लगे हैं दादुर
मौकापरस्ती के
कोयल की उदास आंखें
क्यों हो चली हैं नम
किसी ने थोप दी हैं
भारी अंगुलियां उसके होंठों पर
छन्दों में बहती सुबह
फटाफट गुजर जाना चाहती है - अनभीगी
फटे आतपत्र के नीचे
समा जाना चाहता है - सारा जग
नंगी दीवारों पर पुत गई है अमावस
बहुतेरे लोग
बेवजहा लगे हैं
उन पर कभी चिपकाये गये
पोस्टरों का अर्थ खोजने की
असफल कोशिश में
धरती पर मिट चुके हैं
हाल ही गुजरे हुए समय के पद चिन्ह
और आने वाला हर पहर
बनाए चल रहा है पगडंडियां
अपनी-अपनी अलग-अलग



तलाश

अहसासों की सलीब पर
टंगा
समय का कबूतर
ठंडा गया है – फड़फड़ाकर
हवाओं में बहने लगे हैं
उसकी आकांक्षाओं के पंख
ठंडी कल्पनाओं की तरह.
अनुत्तरित सवालों की
बेअंत यात्रा से थक कर
लपेट कर रख दिये गये हैं
कोशिशों के बिस्तरबन्द.
किसी प्रतीक्षालय के कोने में लगी
तसल्लियों की सबील
अब बुझा नहीं पाती – प्यास और –
तृषार्त उद्वेगों के सारस
लौटने लगे हैं मायूस
किसी पूर्ण जलाशय की तलाश में.

अवसान

गरम हवाओं की तेजाबी खुशबू
छोड़े देती है
भौतिक स्पर्शों के कड़वे अहसास
आह,
तकलीफों के आलपिन
किए देते हैं छलनी - मेरे जिस्म को
बींध-बींध कर.
आकार बदलती हुई
समय की गतिमान परछाइयां
कराती हैं मुझे अहसास
कभी लंबेपन का तो - कभी बौनेपन का -
किन्तु मैं रहता हूं वहीं
जहां हूं.
लू की चरम स्थिति मे
सिर से रजाई ढाकने जैसी मजबूरी के ठीक समान
विडम्बनाएं उभारने लगती हैं
द्वन्द्वों के अदृश्य रेखाचित्र
धुंधले कैनवासों की पृष्ठभूमि मे
जहां
प्रतिबद्ध जिज्ञासाओं के
रंगों के प्रयोगते हुए भी - मैं
नहीं बना पाता हू उसे मूर्त
जो मुझे अमूर्त सा दिखाई देता है
पल - पल.

चार दृश्यबंध

जिन गालों को बनाकर निशाना
तुमने मारना चाहा था थप्पड़,
उन गालों पर, नहीं बन पाए हैं
तुम्हारी अंगुलियों के निशान.
तुम्हें पता है
उन्हीं में से एक – बचाकर अपने गाल को
हो गया है रथ पर सवार.
और दूसरा ?
दूसरा भी इसी तरह
निकालते हुए
शहरों और गांवों का क्षेत्रफल
पी रहा है माखनियां छाछ
और तुम –
छछिया भर छाछ के लिये
निकाल रहे हो
प्रतिशत के जटिल सवाल.
वह तीसरा व्यक्ति –
आदमकद दर्पण से होकर रूबरू
संवार रहा है अपनी दाढ़ी
और ले रहा है जायजा
अपने चेहरे का – कि
वह प्रधानमंत्री जैसा लगता है कि नहीं.
किसी को भी नहीं आ रही
पास ही जलती हुई तितलियों की गंध.
सभी कर रहे हैं
अपना – अपना भोजन

पीठ फेर कर – इस सबसे बे-ख़बर.
तुम्हें पता है
कंटीले गुलाबों पर कलियां –
खिली भी नहीं थी कि जल गईं.
चौथे तुम हो
तुम्हें शायद ही कुछ पता हो – क्योंकि
तुम आइने के सामने नहीं हो –
मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं और
मुझे साफ-साफ दिखाई दे रहे हैं
तुम्हारे गाल पर
चारों तरफ से
पड़ते हुए थप्पड़ों के निशान.



मिथ्या

भूलकर दायित्वों की नैतिकता को
बुनने लगते हो
सहूलियत की चटाइयां
गवाक्षों में लगी
खस टाटियों पर फिसलती
पसीनों की दरिया
कितना सुखद स्पर्श देती होगी – तुम्हें.
आपके द्वारा
हवा में भी सूंघ ली जाती है
आत्मपरकता की खुशबू
गृद्धदृष्टि वाले वकील की तरह.
किसी मिथ्या आरोप को
साबित करने की कोशिश में
बुनवा लिये जाते हैं
झूंठी साक्षियों के दस्ताने – आपके द्वारा.
आपके दिशा–निर्देशों पर
मेरा जैसा अबोध व्यक्ति
बांध कर काली पट्टी – अपनी आंखों पर
करने लगता है निर्वसना का चीरहरण –
और तुम भूलकर
प्रत्यक्षता की अहमियत को
मनाने लगते हो जश्न
झूंठी गवाही के दस्तानों से
मिटाई गई सर्दी को देखकर.

अनुशासन - पर्व

इतिहास जीते हुए समय की घड़िया
बजाने लगी हैं अलार्म की घंटियां,
घंटाघर पर बैठा परिंदा भी
फड़फड़ाकर पंखों को
करने लगा है कोशिश - उड़ने की.

शहरों की चतुष्पदियों पर खड़े
यातायात के सिग्नल
सुचारु रूप से चला रहे हैं
धैर्य और मर्यादाओं के वाहन.

शुतुर्मुर्ग ने झाड़ दिये हैं
पुराने पंख -
कछुए की चाल में
दिखाई देने लगी है अब - कुछ तेजी -
सर्पों ने बदल दिया है
अपना रास्ता - और
वन-मूषक उतार कर
अपने काँटेदार कवच
घूमने लगे हैं बाम्बियों के इर्दगिर्द -
संलग्नता की मजबूत रस्सियां
उभारने लगी हैं - निशान
कुँए की शिला पर.

इस तरह अनुशासन की कविता
अब करने लगी है - क्रैं
बेजरूरत शब्दों की.



गिद्ध और कबूतर

इस वृक्ष से उस वृक्ष पर
अभी-अभी उड़ा है एक गिद्ध
उसके काले पंखों की ठंडी हवा के फ़रेब से
उन्मुक्त हो मैं
नहीं देख पाया था उसके तीक्ष्ण पंजे.

मेरे बुर्राक कमीज पर जब
टपक पड़ी थीं खून की दो बूंदे
उसके पंजों में फंसे
तड़फड़ाते कबूतर की – तब
मैं चल पड़ा था
गिद्ध के गन्तव्य की ओर
कबूतर के खून से बनी पगडंडी पर.

आखिर मैंने देखा
एक घनघोर वृक्ष – और
उसकी चोटी पर
तन्द्रालीन जमुहाई लेते हुए उस गिद्ध को.

पेड़ की घनी अंधेरी छांव मे
शिनाख्त के रूप में
अब वहा बचे थे
कबूतर की मौजूदगी के नाम पर
कुछ छितराये हिस्से.

मैं समझ चुका था
गिद्ध के यो वृक्ष बदलने का मतलब

किन्तु, निरंतर कचोट रहा था मुझे
यह अनुत्तरित प्रश्न – कि –
आखिर कब तक बदलते रहेंगे
ये गिद्ध मन चाहे छायादार वृक्ष
और कब तक फड़ – फड़ा कर
दम तोड़ते रहेंगे – ये निरीह कबूतर
उनके तीक्ष्ण पंजो में



उन्नीस सौ सतहत्तर

आत्म परक सन्नाटों का टनसुनापन
अब कुछ टूटने लगा है
सुझलने लगी हैं
खाली हथेलियो की उलझी हुई लकीरें
समाजवाद की जीर्ण सड़कों पर
अब देखी जा सकती हैं
समतावादी चादर की बिछायत.

अराजकता की बद मुट्ठियां
होने लगी हैं - फरार -
वाजिब अनुशासन के
खुरतालो की आहट से चौंक कर.

निश्चय ही
सड़क, पगडंडियां और राजमार्ग
अब दौड़ने लगे हैं -
दीवारें लांघने लगे हैं
निपटारों के हेलीकॉप्टर
नजदीकियो मे बदलने लगी हैं
उस अनदेखे गन्तव्य की दूरियां
और -
अब - हम पढ़ सकते हैं
इन अंधेरी सड़कों के छोर पर अंकित
गुमशुदा गन्तव्य की निकटता का संकेत
उजाले की लिखावट में.

आत्म – प्रवंचना

बेबाक् आसनों की रिक्तता पर
खोजते हुए
आलीशान थियेटर के पर्दे
झाड़ने लगते हैं
निष्क्रियता की बहुपरती धूल.

खुले दरवाजों से बाहर निकलती हुई
कलात्मकता की हवा
पीने लगती है
अहसासों कड़वी घूंट – प्रतिबद्ध शहरों की तथाकथित गलियो मे

तडंग खजूर की
संध्याकालीन परछाइयां – भागने लगती हैं
प्रगतिशीलता की तन्दुरूस्त सड़कों पर
अखरोट के छिलकों को फेंकने वाली
संभ्रान्त कलाइयों की झूठी अनदेखी करने वाले
आत्मघोषित प्रगतिवादियों के
टूटे हुए जत्थे
यदा-कदा उछाल दिया करते हैं
उनकी बदस्तूर सक्रियता के गर्म छींटे
और आत्म प्रवंचना से आखें मूदे
कितना खुशनसीब समझते हैं अपने आपको
सुनाकर दिवास्वप्न की गाथा
किसी अपरिचित राहगीर को.



आप लौट जाएं

आप मत बुनो कसीदे
मेरी हमदर्दी के
बर्फ़ में गलने दो मेरी हथेलियां
यदि जरूरत पड़ी तो मेरी ये हथेलियां
तोड़ देंगी बर्फ को - या फिर
सीख लेंगी जीना इसी में.

मुझे क्रियान्वित करने दो
मेरे अपने सुझाव - क्योंकि -
मेरे हृदय का एक भी कोना
नहीं दे पाया है स्थान
तुम्हारे विश्वास को.

मेरे लिये बेहतर यही होगा कि -
मेरे और मेरी परिस्थितियों के बीच
न बने कोई मध्यस्थ.

परिस्थितियां मेरी अपनी हैं
और संघर्ष मेरा दायित्व.

मैं कोई अंधा नहीं हूं
मेरी आखें भी देख सकती हैं
संभावित परिणाम - और मेरा छोटा सा दिमाग भी
सोच सकता है यह - कि
मैं मेरी परिस्थितियों से लडूं/जीतूं/पराजित होऊं/
या समझौता करूं ।
आप न बनाएं इसे
अपनी चिन्ता का विषय -
कृपा करके आप यहां से लौट जाएं.

□□

जहां भी हूं, ठीक हूं

मैं हूं एक महान् आदमी
इस महान देश का – और ये सब हैं
मेरे बफादार कुत्ते
जो – भौंकते हैं दिन-रात
मेरे लिये और मेरी जमात के लिये.
मैं बैठा हूँ
इस बहुमंजिली इमारत की
सबसे निचली सीढी पर
और वे चाहते हैं – मुझे अपने पास बुलाना –
ऊपर से लटकाकर एक कमजोर रस्सी.
मैं कदापि नहीं चाहता उन तक पहुंचना
क्योंकि –
मुझे तो जन्म से ही मिला हुआ है
उनके समकक्ष,दर्जा.
वे ऊपर से अव्वल हुए तो क्या
नीचे से तो अव्वल और हो भी कौन सकता है-
मेरे सिवा –
नीचे से ही सही कम से कम
मेरा नाम भी तो गिना जाता है
पहले नम्बर पर.
तो फिर क्यों
पकडकर उस कमजोर रस्सी को
मैं अपने आपको कर दूं
उनके हवाले ?
मैं तो जहां भी हूं
जैसे भी हूँ
ठीक हूँ



पहेली

कब मुक्त होगा आदमी
बेअंत सन्नाटों से
कब समाप्त होगी. इन
दिशाहीन रसतों की
लंबी पदयात्रा.

टक-टक करती हुई
घड़ी की अपाहिज सुइयां
कब तक चाटती रहेंगी
बंद रसतों की खाली हथेलियां.

और निरंतर चलते हुए भी
जिन्दा दफना दी जाएंगी
सन्नाटों के उसी गांव में
जहां की तंग पगडंडियां
पूछने लगेंगी
सवालों की जटिल पहेलियां –
हर गुजरते कमजोर कदमों से
जिनके मस्तिष्क की
अनुसुलझी रेखाओं पर
पक कर गिरने लगेंगे
असफलताओं के सफेद बाल.

□□

और कुछ बाकी है अभी ?

विगत के कसैलेपन को
भुलाने की कोशिश में
वह मिटा रहा है सलवटें
निचोड़ कर यूं ही रख छोड़े सूखे कपड़ों की.
जीभ लपलपाते कुत्तों की
गिरफ़्त से बच कर
उसने अभी – अभी बिछाया है
राहत का कालीन अपने लिये.
तुम क्यों होना चाहते हो
उसके स्वप्नभंग के दोषी.
सचमुच न सही
स्वप्न में तो उड़ता ही होगा – वह
परियों के साथ.
कब, क्या कुछ घटित हो जाए
इसी आशंका में डूबा वह
नहीं रख पाया है –
मौसम की सेहत का ध्यान.
यह कोई ऐसा अपराध तो नहीं – कि तुम
धरे जा रहे हो बोझा इस
मरियल घोड़े की पीठ पर
ऐसा कौन सा अवसर चूका है तुमने
जब कोयल के अंडे
नहीं फोड़े गये हों अनपके.
क्या और कुछ भी है अभी बाकी
बोझ लदे मरियल घोड़े की पीठ पर
चाबुक मारने के सिवा ?

❑❑

शुभचिन्तक

मुझ से मत करो
अब और अधिक घटिया मजाक
मुझे जरुरत नहीं किसी चीज की
न मैं सस्ताई चाहता हूं
और न उपलब्धि
सब कुछ उपलब्ध है मुझे.

मैंने अपनी अपेक्षाओं और जरूरतों को
जकड़ लिया है अपनी मुट्ठी में
और सीख लिया है
एक ही कपड़े को बरसों चलाना
बिन जूते कांटों और पत्थरों पर चलना
एकाहार या निराहार रह कर समय धकेलना.

तो फिर –
सब कुछ बकवास है मेरे लिये.
मेरी चौपाल में न धूप ठहरती है
न रात का अंधेरा
इससे बढ़कर और खुशनुमा बात-
हो ही क्या सकती है मेरे लिये.

चाहे मैं भूखा हूं/नंगा हूं/बीमार हूँ/
अनपढ़ हूं/गंवार हूं/बेरोजगार हूं –
समय कितनी आसानी से
गुजर जाता है - मेरे करीब से.

ओ, मेरे शुभचिन्तक !

जब मैं स्वयं ही बेपरवाह हूँ अपने आप से
तो फिर तुम क्यों
बैचेन हुए जाते हो मेरे लिये
छोड़ कर अपने अन्तरंग अवकाश को
क्यों व्यर्थ बर्बाद करते हो
अपना बहुमूल्य समय मेरे लिये ?



जरूर आना

पहाड़ों से टकराकर
बरसने वाली बर्फ़ानी हवाओं !
तुम आओ, और बुहार जाओ
मानवीय अस्मिता का यह बियाबान जंगल.

ए, घर की मुंडेर पर बैठने वाले कौवे!
जरा संकेत तो कर - कि - क्या
वे हवाएं गुजरेंगी इधर से
और बुहारेंगी
अस्मिता की लडाई के रसते में
अटे पड़े अवरोधों को.

मेरे जैसे न जाने कितने ही लोग
न जाने कब से पाले हुए हैं यह जिगविषा
कि संघर्ष के इस रसते में आए -
अवरोधों को बुहार फेंकें.

एक समतल सतह पाना
इसलिये कठिन हो पा रहा है कि
कुछ कुचेष्ट लोग मिटा देने को सायास आमादा हैं
आदमी की अस्मिता को -
उसके अस्तित्व को.

ओ ठंडी हवाओ !
कभी तुम इधर से गुजरो - तो
भरना हमारी मरी हुई आत्माओं में
तनिक जीवन का संचार.

शायद हो सके, हम भी उठें एक साथ
सगरपुत्रों की तरह – और
तुम्हारी ही दिशा में
तुम्हारे ही इस महाप्रयाण में हो जाएं शरीक,
जुटा सकें कुछ कर गुजरने का साहस.

ओ, पहाड़ों से टकराने वाली
बर्फानी हवाओं तुम
बरसते हुए इधर से ही गुजरना
तुम जरूर आना इस दिशा में
बुहारने को यह मैलापन – जो
कब से जमा पड़ा है इस व्यवस्था में
तुम आना जरूर
जरूर आना तुम
जरूर – जरूर.



किस बसंत का फूल चुनूं

मुझ मे
और
मेरी मौत को बीच
नहीं रह गया है.
कोई अधिक फासला

मैं खड़ा हूं
निढाल, असहाय और समर्पित –
लड़खड़ाकर भी
न चल पाने की
मजबूरी के कारण
बूचड़खाने के खूंटे से बंधी
अबोध गाय सा.
प्रवंचना और विडंबनाओ की
प्रलयंकारी बाढ मे
आकंठ डूबी
मेरी देह को
''वे'' लोग ही बचाने की भरसक कोशिश मे लगे हैं
जिन्हे मुझे से कुछ वसूलना है.
वाह रे, मेरे दुर्योग ।
अब तक गुजरे इन सभी बसंतो – और
अब गुजरने वाले बसंतो मे से
किस बसंत मे खिला हुआ फूल चुनूं ?
इन बसंतो मे –
जब भी मैंने अपने आपको पाया है जिन्दा
याकि –

(अपनी नजर में नहीं)
बिन-मरा होता हूँ
तब
वे ही लोग अपने शिकंजों में
करवाते हैं मेरा पीछा
मेरी गिरफ्तारी के लिये
जिससे –
मुक्त हो पाने की हर सभव
कोशिश में – मैं
लेने लगता हूँ जायजा
मेरे और मेरी मौत के दरम्यान
निरतर कम होते हुए
फासले का

❑❑

उतार फेंकना होगा

बहती हवाओं में सुकून की तलाश
एक नाकामयाब कोशिश होगी
ठीक वैसे ही – जैसे
डाल–डाल उड़ने वाली
तितली की परछाई पर
पांव रखना –
किसी सफेद गिरहकट द्वारा
फेके गये वक्तव्य की तरह
जिस क्षण उसे हम जहां देखते हैं
अगले ही क्षण वह वहां नहीं होती.

आक्रोश के लंगड़ाये घोड़े
कब तलक ढोते रहेंगे
विडंबनाओं की बग्घी पर खचाखच भरी
सवालों की सवारियों का बोझ.
क्या यूं ही मुंदी रहेंगी
उत्तेजनाओ की आँखे – और
विपन्नता के चौपाल में
यूं ही चलता रहेगा
अभावों का नग्न नृत्य.

आशाओं के घुंघरु – क्या
एक–एक कर यूं ही – टूटते रहेंगे.

आक्रोश के घोड़ों को
फड़फडाने होगे

अपने पावों में भरना होगा
उत्तेजनाओं का आवेश –
उतार कर फेंकना होगा
सवालों की सवारियों को गन्तव्य पर
और खोलकर धकेलना होगा
विडम्बनाओं की बग्घी को
अपने कंधों से



दिनारम्भ पर

पलाश पर बैठी चिड़िया
बराबर बतिया रही है - फूलों से
अधजगी सूरज की किरणें
और अधजगा
करवट बदलता मैं
हो रहा हूँ - उन दोनों की बातों में शरीक.

सुई सी चुभने लगी हैं
सूरज की किरणें
मेरी नंगी पीठ पर और
कानों को काटने लगी है
चिड़िया की चिंचियाहट.

मौसम की ठंडक उड़ने लगी है
और उतर कर भागने लगे हैं
हरी घास की पीठ पर से
बूंदों के सवार.

अधजगा मैं -मैं भी
जगाना चाहता हूँ अपने आपको
चिड़िया की तरह
कहना चाहता हूँ - अपनी बात
किन्तु
पलाश और उसके फूलों की तरह
न कोई मुझे पास बैठाने वाला मिलता है
और ना कोई सुनने वाला.

इसी शशोपंज मे न जाने कब
हवा में लहराती सवालों की चादर
आशीर्ष ढक जाती है मुझको
और चाहता हुआ भी मैं
न सो पाता हूँ, ना जाग पाता हूँ
और ना ही हटा पाता हूँ सवालों की
उस चादर को
अपने जिस्म से परे



मन्दविष

पत्थर सी थम गई हैं - हवाएं
मौसम की गंध पीते - पीते

अचानक -
बरस उठते हैं
बे मौसम के बादल-
बरस कर छिप जाते हैं
आसमान के नीले पर्दे के पीछे
जगा कर बालू की सौंधी प्यास.

हर बदन और मन में
घुसी चली जा रही है
इक दुर्गन्ध - और आदमी
कब से पिये जा रहा है
इसी का मन्द विष.

गीले ईंधन के जलने से
उठता हुआ धुँआं
अनवरत घोटे जा रहा है दम - सभी का.

रुआई आंखों के आंसू
बेअसर हो कर थम गये हैं - बहते-बहते
और
सूख गये हैं - इसी प्रतीक्षा में कि -
पथराई हवाओं में होगा लय का संचार
और ईंधन भभक कर बनेगा
एक भीषण अग्नि-कांड.

भक्ति गीत

मेरी गली के अखाडे
जो अक्सर भरे रहते थे
पहलवानो से
अब रहने लगे हैं खाली-खाली

शायद मेरी गली के
इन अखाडों के पहलवान
पहन कर सफेद टोपियां
पहुच गये हैं सदनों मे

शायद वे वहीं
चला रहे होंगे अपनी-अपनी बातें
कथा तक – और
मार रहे होंगे
जांघो पर थप्पिया

आसमान बन गया है
एक समरागन
टुकडा-टुकडा हुआ चाहता है – चाद
और सितारों ने
थाम लिये हैं खजर – अपने अपने हाथों मे
यह चाद्रमसी रात
हो गई है शिकार
इन शरगजा के प्रहारो से

लोकतत्र के मदिरो की पवित्रता को
वे ही खडित कर रहे हैं – जो

अनुशासन और शालीनता के
शशकों को
कुंए में धकेल कर आये हैं

इन्हें क्या परवाह है कि - ये
पहुंचा रहे हैं
किसी के विश्वास को ठेस
और वो नहीं कर रहे हैं वह काम
जिसके लिये उन्हें भेजा गया है
इस मंदिर में.

पूजा न सही
कम से कम
चुप रहकर सुन तो लो
यह आराधना
शायद हो सके
इस आराधना के दौरान
निकल जाये कोई
जन-कल्याण का गीत
किसी के मधुर स्वर से

चीख

अधेरे मे फेके गये पत्थर के
किसी के सिर से टकरा जाने के कारण
उभरी हुई चीख
अभी-अभी सुनी है मैंने,
शायद इस घनी अधेरी सीमा मे
मौजूद होगा
मेरे सरीखा ही कोई आदमी
वहा फेका गया पत्थर
निश्चित ही टकराया होगा
उसके सिर से
निर्निमेष अधेरे को देखती हुई
उसकी आखे
अधिया गई होगी अब तो.
बेचारा देख भी नहीं पाया होगा
अपने सिर से
निकलते हुए खून को
मैं भी
खड़ा हूँ
उस अधेरे की परिधि मे
अपनी अधी आखो से
अधेर को ताकते –
उस पत्थर से बचने की
हर सभव कोशिश मे – जो
बिना निशाने के तीर सा फेंका हुआ
कभी भी टकरा सकता है
मेरे सिर से

❑❑

जल तरंग

अनन्त और गहरे रेगिस्तान में
धंस-धंस जाते हुए कदमों से
वह आगे बढ़ता है
सूखे कंठों से
निगलता हुआ थूक
सूरज की रोशनी में
बढता है आगे
जल की तलाश में
भटके हुए कुरंग की तरह.
शीशे की तरह चमकती हुई
लहरों तक पहुंचता है जब वो – तो
हो जाता है –
मरीचिका का शिकार.
सोचता है –
जब मैं वहां था – तो
यहीं – कहीं दिखाई दे रहीं थीं
शीशे सी चमकती
पानी की लहरें
अब कहां गई – वो ?
लगता है –
यहां कोई बजा रहा था
जल तरंग
सांय – सांय करती
गर्म हवाओं के थपेड़ों में
पिटता हुआ भी.
अनन्त – गहरे रेगिस्तान में

चलता हुआ यह आदमी
खोजना चाहता है
बिना पानी और पात्र के
बजते हुए जल तरंग का रहस्य
बैठ जाता है दूर
खजूर की छोटी सी छांव में
तब
हवा के गर्म झोंके
छू-छू कर उसके गोले बदन को
गुंजाने लगते हैं स्वर
जल तरंग के
यही जीवन है
इस माटी के सागर का
जहां
कांटों भरी झाड़ियों के रन्ध्रों से
गुजरती है हवा
तो बजने लगता है जल तरंग
बिना पानी और पात्र के



समय के विपरीत

हर सुबह वह नहीं होती
जो मैं सोचता हूँ
और दिन भर का वह तमाम हिस्सा भी
नहीं होता
मेरी कल्पनाओ के अनुकूल
एक अनत भटकाव
मेरे कदमो मे जमा है - पत्थर सा
और मैं
कुछ तलाशने की व्यग्रता के बीच
खोने लगता हूँ
अपने आपको
मुझे लगता है
मैं चल रहा हूँ
समय की विपरीत दिशा की ओर
किन्तु समय का भरपूर आवेग
रोक रहा है मेरे कदमो को
मोड देना चाहता है मेरा पथ
अपने अनुकूल
फिर भी चल तो रहा हूँ मैं
अपनी दिशा की तरफ़ - धीरे-धीरे
तलाश है मुझे
एक झोके की
जो ले जा सके
बहते हुए समय के विपरीत
मुझे - अपने मारग मे

अदला-बदली

खरगोश की तरह खड़ा करके अपने कानों को
ये सुना करते हैं
पड़ोसी के घर में
गिरने वाली हर सुई की आवाज़.
कौवे की तरह घूमती हुई
उनकी चंचल आंखें
देख लेती हैं
किसी की पीठ पर अंकित
पहचान का चिन्ह.
बगुले की तरह
ध्यान मग्न रह ये
मौका पाते ही कर लेते हैं
अबोध मछली का शिकार - और
मामूली खटके साथ
जाग पड़ते हैं जो
श्वान की तरह.
एक दिवांध की तरह बैठे हैं - वो
अमलतास की सबसे ऊंची टहनी पर
कोई आखेटक आता है
सुबह के अंधियारे में - और
मार कर पत्थर
उड़ा देता है उसको - अब
उसकी जगह
आ बैठता है
एक पालतू सफेद कबूतर
जिसे छोड़ा है किसी ने - बैठने के लिये

अमलतास की सूखी टहनी पर—
आकाश की अनन्त सीमाओं में
उड़ते रहने के बाद
मिला होगा उसे भी सुकून
इस अमलतास की अपत - कंटीली डाल पर
बैठने का
जिसे सींच-सींच कर
बड़ा किया था मैंने कभी
अपने खून और पसीने से
इस आशा में कि –
यह होगा हरा-भरा
और देगा
लाल-लाल फूलों की
ठंडी-ठंडी छाया.
मैंने नहीं सोचा था कभी – कि
पुष्पित - पल्लवित होने से पहले ही
बदल दिया जाएगा इसे
ईंधन की शक्ल में.
मेरे खून और पसीने से
सींचे हुए इस पेड़ पर
क्या यूं ही आ-आ कर बैठते रहेंगे
दिवांध और सफेद कबूतर
और जाते रहेंगे
इसी तरह उड़-उड़ कर.



दुर्भिक्ष का एक पूरा दिन

प्यासी सुबह दिन भर खड़ी रही
सबील की खिड़की पर
गहरे निर्जल कूपों में
झांक-झांक
अंधियारा पीती रही.
कोसती रही
सूखे पनघट को
देख-देख
छीलती रही छाल दोपहरी
सूखे दरख्त की
पापड़ सी
चाबती रही सूखे पत्तों को.
दहकती माटी की चिता में
जल गई
(दु:) गंध मुर्दा पशुओं की.
नहीं दीखे नोचते/मंडराते
कौवे/कुत्ते/गीध
पशु मुर्दों पर
शायद खुद ही बदल गये हो
मुर्दों में.
चिड़िया नहीं चिंचियाती
गौधूलि नहीं उड़ती
नहीं बजती मंदिर की घंटी.
हर देहरी से हाथ पसारे
सांझ लौटती
बेबस आंखों की भीगी पलकों के उत्तर

सुन-सुन
रिक्त हथेली लिये रात
भूखी रोती है
महा अकाल की मावस मे
निर्भय सोती है

मैं हूं एक नागरिक

मैं हूं एक मतदाता
दुनियां के इस सबसे बड़े लोकतंत्र का
और ये सब हैं
मेरी दया पर जीने वाले परजीवी.

ये वो कुत्ते हैं जो
पेट भर खा लेने के बाद
सो जाते हैं गहरी नींद में
ये सिर्फ भौंकते हैं – या
दुम हिलाते हैं – मगर काटते नहीं

बहुत खुशनसीब हूं मैं
क्योंकि – सिर्फ मैं ही
एक नायक हूं
इस लोकतंत्री नाटक का.

समूचा परिदृश्य/
समूचा कथ्य/
समूची शैली/
और समूचा रंगमंच है मेरी गिरफ़्त में.
कोई भी नाटकबाज
जब कभी भी उभर कर आता है मेरे सामने
तो करने लगता है
मेरा ही गुण-गान.
मैं ही एक चलताऊ मोहरा बन गया हूँ
राजनीति की इस शतरंज का
जब कभी भी
खेली जाती है कोई नई चाल
हमेशा

मुझे ही बढ़ाया जाता है आगे
पिटने के लिये.

पंचायत से संसद तक
सरपंच से मंत्री तक
सभी ने आजमाया है मुझको
अपने-अपने भाग्य के निर्णय के लिये.

कभी कोई दिखाता है मुझे
उगता हुआ सूरज – तो
कोई खड़ा हुआ चक्र
तो कोई दिखाता है
झनझनाता पंजा.

एक ने फैलाई है खुशबू
कमल के फूल की
मेरे चारों ओर.

जब मैं लौटता हूं
अंगूठे से रगड़ते हुए
तर्जनी पर लगाये गये अमिट स्याही के निशान को – तो
उगता हुआ सूरज/खड़ा हुआ चक्र/
झनझनाता पंजा और खिलता हुआ कमल
करने लगते हैं मेरा उपहास
और मैं बाध्य हो जाता हूं
यह सोचने को – कि
क्या हमेशा चुनता रहूंगा – मैं
इन्हीं विकल्पों में से किसी एक को
या मैं स्वयं भी कभी बन पाऊंगा
एक सशक्त विकल्प इस विशाल लोकतंत्र का.

वसंती धूप में

वसंती धूप में
पकते हुए बाल – और
चेहरों पर उमड़ता पतझर
सब कुछ वही – जो
अब तक गुजरे हुए
सभी वसंतों से होता चला आया है.

वही घुड़सवार
धड़-धड़ाता गुजर जाता है
खामोश सड़कों पर
किसी अबोध शिकार की तलाश में
और लौट जाता है
साध कर एक अचूक निशाना.
एक तीर से
किए हैं उसने
कई-कई शिकार.

गुलदस्तों में सजे हुए फूल
सूख कर हो जाते हैं – निर्गंध
और बिखर जाती है भर-भरा कर
उसकी मादक गंध.

न जाने कहां चली गई
वह–
नशे में झूमती बारात – कहां ढूंढूं उसे
यहां तो रह गये हैं – सिर्फ
वसंती धूप में पकते हुए बाल
और चेहरों पर उमड़ता पतझर.

❑❑

सरकार की अस्थिरता पर

किसी को कुछ पता नहीं
अगले ही पल
घट जाए कोई - अनहोनी.

हो सकता है
थाली में परोसे गये व्यञ्जनों के
अगले ग्रास पर ही
लिखा हो -
किसी और का नाम.

सभी अटक रहे हैं
दरख़्त की टहनी पर
पीले पत्तों की तरह
न जाने कब
हवा का झोंका आए
और न जाने कब वे
हो जाएं शामिल
दरख़्त के नीचे पड़े
सूखे पत्तों के ढेर में.

अनबोले लोग

लोग कुछ बोलते नहीं
एक नदी बह जाती है - सिर से
बहे चले जाते हैं लोग
लहरों के मनोरंजन में -
मिटा देते हैं अपने आपको

रक्त में हो गया है हिमपात
अंधेरे में भी न जाने क्यों
दिखाई देते हैं सितारे उन्हें

नए-नए लिबास में
उभर आते हैं -
वही पुराने चेहरे
न जाने क्या - लोग -
उन्हें पहचानते नहीं

न जाने क्यों - वे
समझ पाते नहीं
दिशा बदलती हवाओं का रूख
लहराने लगते हैं - लोग
सदा उनके अनुकूल

लोग कुछ बोलते नहीं
एक नदी बह जाती है सिर से
बहे चले जाते हैं - लोग

❑❑

चिड़िया की विजय

मेरी कल्पना के अमूर्त वन में
नहीं बह पाई है
एक तरल सुबह की ठंडक.

विष भरी दोपहरियां
काटते-काटते
न जाने कब
इतनी रफ्तार से पक चुकी थीं फसलें.

रक्त सनी चोंच वाले गिद्धों का
जब हो गया था कब्जा
पीपल के हरे पेड़ पर – तब वे
उजाड़ने लगे थे
असहाय और निर्दोष परिन्दों के घोंसले
जिससे मौसम के रग-रग में
बढती ही जा रही थी
सर्प-दंश की झनझनाहट.

इस बीच न जाने कब
आसमान बदलने लगा
घनघोर घटाओं में
तड़ा तड़ चमकने लगी बिजलियां
कनफोड़ू धमाकों के साथ.
मैंने देखा
हवा के तेज झोकों के साथ
वह तना जिस पर बैठा था –
वह भारी गिद्ध

चरमराकर हो गया धराशायी
जब
ढीली हो चली थी
उसके पंजों की पकड़ तब –
फुर्र से उड़ चुकी थी वह चिड़िया.
अब

मुझे दिखाई दे रहे हैं
पीपल के तने और गिद्ध – मरघट से शांत
और वह चिड़िया – फुदक-फुदक कर इस टहनी से
उस टहनी पर
मना रही है जीत की खुशियां.



सत्यमेव जयते

सत्य की यदि की जाती है उपेक्षा तो
वह विकृत बनकर आती है सामने
तब बेहद कठिन हो जाता है
उसके समक्ष उपस्थित रहना

सत्य में न मृदुता होती है
और न मधुरता
वह सदैव होती है
कड़वी और कसैली

वह न खूबसूरत होती है
न आभूषण - मंडित
वह तो होती है हमेशा
बदशक्ल और निपट-नग्न.

बिना आंखों के भी देखा जा सकता है उसको
अनुभव किया जा सकता है
दिल और दिमाग से.

किन्तु उससे निपटने के लिये
सदैव होती है - हमारी
कमजोर इच्छा-शक्ति
अपर्याप्त होती है साधना
और अभावग्रस्त होती है
हमारी क्षमता और प्रेरणा.

वह कोई पत्थर नहीं जो

झूंठ की रस्सी से
घिस-घिस जाए.

सत्य को जरूरत नहीं
ऊंचे स्वरों की
चाहे किसी भी स्वर में बोली जावे
सत्य हमेशा रहती है सत्य.



दशरथ का कहना है

मत उछालो मेरी नगरी को
गेंद बना-बना कर
पालो में बँटी रेखा के
कभी इस-पार – कभी उस पार
रहने दो तटस्थ – इसे
मध्य रेखा पर
तुम्हे याद होगा
मेरे मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने –
त्याग दिया था राज-पाट
एक इशारे पर तो
कब मागा होगा उसने विद्वेष का ऐसा भव्य मंदिर
सरयू तट पर

वह जिन्दा है चिरंतन आदर्शों में
गतिमान है संस्कारो मे
मत बनाओ उसे बुत पत्थर का
मत पोतो कालिख
अग्नि परीक्षा से निखरे
इस नगरी के चेहरे पर
ऐसा न हो कभी वनवास से
लौटे जब वो – तो
पहचान न पाए इसे – और
कहने लगे –
यह नहीं है
मेरी अयोध्या

पांच - साला रेस

पांच साला रेस के मैदान से
लौट चुके हैं
करीब-करीब सभी घोड़े
अपनी-अपनी घुड़सालों को -
कुछ जीत कर - कुछ हार कर.

अब पूरी तरह
थम चुकी हैं इन घोड़ों की टापें
कुछ बेहद थके हुए
निराशा के सागर में डूबे
आंसू बहा रहे हैं
सामने रखी अनखाई घास पर - तो

कुछ ने
ओढ लिये हैं
विजय की खुशी के मुलायम शाल.

नये हस्तिनापुर की
खामोश सड़कों पर
मच चली है
अफरा-तफरी और -
नकेल खींचने वाले
घुड़साल के मालिक के
चारो ओर
बढने लगी है
इन घोडो की हिनहिनाहट.
इस बार - इस दौड को
जीत पाये हैं

अधिकांश नये घोड़े.

बुढ़ियाए पुराने घोड़े
अब –
लौट कर रेत में
मिटा रहे हैं
अपनी थकान
दाव हारे हुए सटोरियों की तरह.

घुड़ दौड़ के विशेषज्ञ
कर रहे हैं
समीक्षा जीत-हार की
लगता न था कि –
इस ठंडे आवेग में
टूट जायेगे इतने मजबूत किनारे.
इससे पूर्व
दिखाई नहीं देती थी
लहरों में इतनी उत्तेजना.

बहरहाल
अब वह समय नहीं रहा जो
एक बार रेस जीतने के बाद
पांच साल तक
मुंह ही न करें मैदान की तरफ
उन्हें हर बार
होना पड़ेगा मुखातिब
और संवारना पड़ेगा
उसी घुड़-दौड़ के मैदान को
ताकि–
वे जीत सकें – अगली रेस
पांच साल के लिये.

लाल लाल फूल

दादी कंडे थापते – थापते,
बाबा गाय को सानी देते – देते,
मां चूल्हे पर
रोटियां सेकते – सेकते,
पत्नि नाखून में
पालिश करते-करते
और अरविन्द
सी ए टी कैट, आर ए टी रेट
रटते-रटते
चल रहे थे
समय की अंगुलियां थामें.

मैं जब
अमलतास पर पतझड़ उतर चुका था –
समय की अंगुलियां
चटकाते हुए गुजरता देख रहाथा –
पूरी तरह झर चुके थे पर्ण वृक्षों के
और उन पर खिल आए थे
लाल-लाल फूल-अंगारों से
तब तक दादी और बाबा की
अंगुलियां मुड़ चुकी थीं
मां की रोटियां
रहने लगीं थीं अधकची
घिस चुके थे
पत्नि के नाखून

और अरविन्द ने
कंधे पर लटका लिया था
बस्ते का भारी बोझ.

इस बार फिर
अमलतास पर पतझर उतर कर चला गया
और समय भी
अंगुलियां चटकाते - चटकाते.
मैं अडिग पर्यवेक्षक सा
देखता रहा यह सब कुछ.

धीरे धीरे निरंतर
उड़ता रहा
बदलते मौसम का रंग -
और मैं
अपने दादी/बाबा/पत्नि और बच्चे
के साथ पकड़ समय की धुरी को
रोकने लगा -
पतझर नहीं आया इस बार -
किन्तु, खिलते रहे
अमलतास के फूल
लाल-लाल अंगारों से.

•

पकड़ से बाहर

वर्तमान की सीढियां
लटकी हुई हैं
मेरी पकड़ से बाहर.
रबड़ से बांध कर लटकाया गया पत्थर
झूल-झूल आता है
कभी ऊपर कभी नीचे
मेरे वर्तमान सा
घर बुहारने के बाद
सड़क बुहारती मेरी पत्नि
लगा देती है कचरे का ढेर
वहीं एक कोने में
जो हवा के झोकों में
बिखर जाता है यहीं -कहीं
मेरे वर्तमान सा
उठा कर एक उम्मीद की सींक
पिरोने लगता हूं उसी झाडू मे
जहां से यह हुई थी कभी अलग
रखते हुए सुरक्षित
मेरे वर्तमान को
निरंतर उठने, बैठने और सोने से
ढीले हुये पलंग की निवार को कस कर
चढने लगता हूं उस पर
ऊंचाई पर लटकी हुई सीढी को
पकड़ने को कोशिश मे
एक हलके स्पर्श से मुझे
होने लगता है महसूस कि मैं पकड़ पाऊंगा उस सीढी को – जो
अभी भी लटकी हुई है
मेरी पकड़ से बाहर.



गीत जन्मा होगा तब

पहला गीत जन्मा तब होगा
जब आदिमानव ने किया होगा
स्पर्श
प्रकृति का
तब जागी होगी सभ्यता
नदी की धारा बन
बही होगी
कल-कल
हवा ने कतरे होंगे पंख
ढलते सूरज के
गीत जब उपजा होगा
पाषाण बने होंगे
आयुध
घूमा होगा
धरती का पहला पहिया
पत्थर की रगड़क से
चमकी होगी चिनगारी
जिज्ञासा की
जला होगा मन तिनकों का
गीत तब जन्मा होगा
बादल गरजे होंगे
बिजली चमकी होगी
पानी बरसा होगा
हर्षित हो, नाचा होगा मोर
गीत तब निपजा होगा.

चौदह नवम्बर

आज के अखबारों में
शासन द्वारा जारी किये गये
बड़े-बड़े विज्ञापनों को पढ़ कर
जाग उठी होंगी - स्मृतियां
बाल दिवस की.
उत्सवों की एक खेप
लेकर पहुंचा होगा
एक सरकारी लवाजमा
छोटे-बड़े सभी स्कूलों में
मुंह फाड़-फाड़ कर चिल्लाये होंगे ढिंढोरची
धूप में तपाया होगा बच्चों को
कतार में सीधा खड़ा करके उनको
बांटे होंगे अमरूद.
किसने सोचा होगा
फीस के अभाव में
स्कूल से निकाले गये बच्चों का पुनर्वास
इसी तरह
हलवाई
के कढ़ाव को मांजते-मांजते
चाय वाले के
कांच के गिलासों को धोते-धोते
स्कूटर और कारों पर
कपड़ा मारते-मारते
मिनियसों/टेम्पुओं के
पायदानों पर लटकते-लटकते
गुटके और तमाखू की चुरियां

फांकते-फांकते
और
उस्ताद को बीड़ियां जला कर
पकड़ाते-पकड़ाते
कब गुजर गया होगा
उनका बचपन
और कब चढ गये होंगे वे जवानी की छत पर
बिना चढे ही-
बचपन की सीढियां
सोच रहा हूँ -मैं
एक बच्चा - जो
स्कूली फाटकों के सीखचों से
बेच रहा है लेमनचूस
स्कूल के अन्दर वाले बच्चों को
क्या वह भी कभी
बैठ पायेगा
उन स्कूलों की फटी टाट पट्टियों पर
कदाचित् ढूंढते-ढूंढते
इसी तरह के अनेक
सवालों का माकूल जवाब -
यूं ही गुजर जायेगा
एक और निठल्ला बरस
और अगले बरस
आज ही के दिन
शासन द्वारा फिर जारी कर दिया जायगा
बाल दिवस का एक पूर्णपेजी विज्ञापन
अखबारों में.